International Journal of Applied Research 2020; 6(12): 155-160

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2020; 6(12): 155-160
www.allresearchjournal.com
Received: 17-10-2020
Accepted: 23-11-2020

अंशुमाला
पी० एच० डी० शोधार्थी, (हिन्दी), ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
अंशुमाला
पी० एच० डी० शोधार्थी, (हिन्दी), ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

हिन्दी के आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास (जैनेन्द्र से अब तक)

अंशुमाला

प्रस्तावनाः

हिन्दी के आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रारम्भ जैनेन्द्र के उपन्यासों से माना जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास मूलतः उन उपन्यासों को कहा गा, जो मनोविश्लेषण पर आधारित चीज है। फ्रायड, एडलर, युंग इसके प्रणेता हैं। इन्होंने मानव–मस्तिष्क को तीन भागों यथा–चेतन, अर्द्धचेतन और अवचेतन में विभक्त कर अवचेतन को विशेष महत्व दिया है। मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अपने चेतन की उपज नहीं है। अप्रत्यक्ष रूप से वह अवचेतन से प्रभावित है। इस अवचेतन को फ्रयड ने यौन–वासना, एडलर ने हीनता की भावना और युंग ने जीवनेच्छा माना है।

आधुनिक उपन्यास जिनमें इन मनोविश्लेषण पद्धति का अनुसरण दिखाई पड़ता है वे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की श्रेणी के अन्तर्गत आ जाते हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में पूर्णतः इन्हीं मनोविश्लेषण–पद्धति का अनुसरण किया गया है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है, लेकिन उनके पात्रों में मानसिक अन्तद्वेन्द्व बहुतायत मात्रा में हैं। आलोचकों का कहना है कि जैनेन्द्र गाँधीवाद के अध्यात्म पक्ष के समर्थक रहे हैं। इसलिए इनके पात्रों में आत्मपीड़न के द्वारा हृदय–परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है। जैनेन्द्र के उपन्यास के पात्र अंतर्मुखी हैं। मानव–मन की अतल गहराइयों में डूबकी लगाते हुए रहस्यमय बने हैं। जैनेन्द्र स्वयं कहते हैं – "जो एकदम वास्तविकता मे लिप्त हैं – वे फिर चाहे जितने भी बड़े आदमी समझे जाता हो–सफल उपन्यासकार नहीं हो सकते। एकदम जरूरी है वे कुछ अबोध भी हो।, मिस्टिक हो।"

जैनेन्द्र (1905–1988 ई०) ने हिन्दी–साहित्य को कुल बारह उपन्यास दिये हैं। 'परख' (1929 ई०), 'सुनीता' (1934 ई०), 'त्यागपत्र' (1937 ई०), 'कल्याणी (1939 ई०), 'सुखदा' (1952 ई०), 'विवर्त्त' (1953 ई०), 'व्यतीत' (1953 ई०), 'जयवर्धन' (1956 ई०), 'मुक्तिबोध' (1965 ई०), 'अन्तर' (1968 ई०), 'अनामस्वामी' (1974 ई०), 'दशार्क' (1985 ई०)। प्रायः इन सभी उपन्यासों में व्यक्ति का मानस–मंथन है। इस मानस–मंथन के केन्द्र में है, काम–पीड़ा व्याप्त है। कभी विद्रोही, उच्छृंखल हो जाता है तो कभी आत्मा हनन तक पहुँच जाता है। जैनेन्द्र के सभी उपन्यासों में नारी का समर्पित स्वरूप मानव को इस काम–कुंठा से उवारती नजर आती है। 'सुनीता' उपन्यास इसका जीवन्त प्रमाण है।

'परख' जैनेन्द्र का प्रथम उपन्यास हैं, जिसमें 'सत्यधन', 'कट्टो', 'गरिमा' और 'बिहारी' कुल चार पात्र हैं। सत्यधन एक शिक्षित युवक है, जो आडम्बरहीन जीवन में विश्वास रखता है। कट्टो उसी गाँव की विधवा लड़की है, जो सत्यधन के पास पढ़ने के लिए आया–जाया करती है। दोंनों के बीच प्रेम पनपने लगता है। 'बिहारी' 'सत्यधन' का मित्र है और 'गरिमा' बिहारी की बहन है। बिहारी के पिता गरिमा की शादी का प्रस्ताव सत्यधन के पास रखते हैं और बुद्धिवादी सत्यधन इसे स्वीकार करता है। इधर कट्टो का ब्याह 'बिहारी' से हो जाता है। कट्टो को निज अनुभूति की गहराई, सात्विकता बिहारी में दिखती है, जिससे वह बिहारी के साथ दैहिक धरातल से ऊपर उठकर आत्मिक हो जाती है।

इस आत्मिक सम्बन्ध में बंधकर 'कट्टो जहाँ अपने गाँव में लड़कियों को पढ़ाने का काम करने लगती है, वहीं बिहारी दूसरे गाँव में जाकर अलग रहते हुए कृषक जीवन–व्यतीत करता है। 'सत्यधन' कट्टो के आग्रह और चालीस हजार रूपये लेते हुए अपनी हीनता से विचलित होता है। प्रस्तुत कथा में 'बिहारी' और 'कट्टों के माध्यम से लेखक ने 'अहं का विसर्जन' का 'प्रेम आत्मदान हैं' इसी दर्शन को स्थापित किया है।

'सुनीता' जैनेन्द्र का दूसरा और उनकी समस्त कृतियों में सबसे सशक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यास रहा है। कथा मात्रा इतनी है कि 'सुनीता' अपने पति श्रीकान्त के साथ रहती है। हरि प्रसन्न श्रीकान्त 'सुनीता' से हरिप्रसन्न' को प्रसन्न रखने का आदेश देता है। सुनीता इस आदेश को स्वीकार करते हु हर–संभव प्रयास करती है कि हरिप्रसन्न को कोई तकलीफ न हो। श्रीकान्त की अनुपस्थिति में क्रांतिकारी 'हरिप्रसन्न', 'सुनीता' को अर्द्ध–रात्रि में क्रांतिकारियों का नेतृत्व कने के लिए निर्जन–वन ले जाता है, जहाँ वह 'सुनीता' को पूरा पाना चाहता है। सुनीता निरावरण हो जाती है। हरिप्रसन्न लज्जित होकर वहाँ से पलापन क जाता हैं पुनः श्रीकान्त और सुनीता प्रेम–पूर्वक जीवन–यापन करने लगते हैं।

यहाँ जैनेन्द्र 'हरिप्रसन्न' के काम–कुंठित व्यक्तित्व को प्रत्यक्ष करते हैं, जिसने क्रांतिकारिता का चोला पहना है। क्रांति के नाम पर वह अपनी हिंसा–वृत्ति की तुष्टि करता है। अन्तश्चेतना जगत की इसी ग्रंथि के तरफ लोक की दृष्टि है, जिसे अपनी लेखनी से उजागर किया है।

त्यागपत्र मे मृणाल की अभिशापित जीवन की व्यय–कथा है। 'मृणाल' एक हँसती–खेलती, चंचल लड़की है, सिकी परवरिश माता–पिता के बचपन में ही चले जाने के कारण उसके भाई ने किया है। भाभी बड़ी कठोर है। मृणाल के जीवन की खुशी उसी दिन छिन गई जब अपनी सहेली 'शीला' के भाई के साथ उसके प्रेम–प्रसंग पर भाभी ने बेंत से उसकी पिटाई की। मृणाल की शादी एक अधेड़ से हो जाती है। पति के प्रति पूर्ण सत्य–निष्ठा के कारण वह अपने पूर्व प्रेम–प्रसंग को प्रकट कर देती है। मृणाल का पति उसे घर से निकाल देता है। एक कोयला–व्यापारी उसे तब तक के लि अपनाता है। जब तक उसके वासा की पूर्त्ति होती है। मृणाल एक लड़की को जन्म देती है, जो दस महीनों के भीतर मर भी जाती है। मृणाल जीवन की कई यातनायें सहती हुई ऐसे निम्न–स्तर के लोगों के पास पहुँच जाती है, जो समाज से कटे अलग, निस्सहाय, पीड़ित हैं। घातक रोग से पीड़ित मृणाल को खोजने हुए उसका प्रिय भतीजा 'प्रमोद' जो अपने बुआ को बहुत मानता है और अब जज बन गया है; मृणाल से मिलता है। मृणाल उससे इन दीनों की सहायतार्थ धन की माँग करती है और घर लौटकर नहीं आती है। प्रमोद (जज साहब) मृणाल की मदद नहीं कर पाता है और जज के पद से इस्तीफा दे देता है। मृणाल असहाय व्यथा झेलकर मर जाती है।

यहाँ जैनेन्द्र की 'मृणाल' अहिंसा की प्रतिमूर्त्ति नजर आती है। वह मिट जाती है; लेकिन समाज से विद्रोह नहीं करती है। मृणाल की शहादत, प्रमोद का त्यागपत्र सम्पूर्ण सामजिक–व्यवस्था पर प्रश्न–चिन्ह खड़ा करती है। इसी तरह जैनेन्द्र के 'कल्याणी' 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत' आदि सभी उपन्यासों में नारियाँ अहिंसक हैं जो एक ओर मनोविज्ञान का आत्मपीड़न है, जिससे दूसरे का अहं तोड़ा जा सकता है और कुंठा का प्रतिफलन है, तो दूसरी ओर गाँधीवादी–दर्शन का प्रभाव।

इलाचन्द्र जोशी (1902–1982 ई०) के प्रमुख उपन्यास 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित', 'लज्जा', 'जिप्सी', 'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले' है। एक लम्बे अंतराल के बाद 'ऋतुचक्र' उपन्यास प्रकाशित हुआ। डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने कहा है – 'उपन्यासों के क्षेत्र में उन्होंने सबसे पहले मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति को निष्ठापूर्वक प्रतिष्ठित किया।'' जोशी जी के पात्र समजा की समस्याओं, परिस्थितियों के बीच अपनी यौन–कुंठा, हीनता और अहं को लिए चले हैं। इनकी रचनायें युंग की पद्धति के सबसे निकट है।

'सन्यासी' (1941) का नन्दकिशोर अपनी अहं की तुष्टि के लिए 'शान्ति' और 'जयन्ती' जैसी कई नारियों का जीवन नष्ट कर डालता है। अन्त में संन्यासी नेता बनकर जेल चला जाता है।

'पर्दे की रानी' (1941) में इन्द्रमोहन और मनमोहन (बेटा और बाप) निरंजन नाम की वेश्यापुत्री के प्रति आकृष्ट है। इन्द्रमोहन इसके लिए अपनी पत्नी 'शीला' की हत्या तक कर देता है। निरंजना के तिरस्कार के फलस्वरूप आत्महत्या कर लेता है।

'प्रेत और छाया' (1945) में पारसनाथ एक प्रेत की छाया से ग्रसित है। यह छाया उसे तब ग्रसती है, जब उसे पता चलता है कि वह एक अवैध संतान है। तब वह अनेक स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करता जाता है। स्त्री जाति के प्रति इस असहिष्णुता, बर्बरपूर्ण व्यवहार का अंत तब होता है जब उसका पिता बताता है। उसकी माँ एक सती–साध्वी स्त्री थी और वह उसी का बेटा है। अन्त में 'हीरा' के साथ विवाह कर इस प्रेत की छाया से मुक्त होता है।

निर्वासित (1946) में महीप सिंह, रमा, सुषमा और नीलिमा से प्रेम करता है और तीनों लड़कियाँ उसे सहानुभूति देकर चली जाती है। लक्ष्मीनारायण सिंह अनेक कुमारियों का जीवन नष्ट कर चुका है। 'लज्जा' उपन्यास में भी डॉ० कन्हैयालाल, दो स्त्रियाँ 'लजजावती' और 'कमलिनी' से प्रेम करते हैं।

'जिप्सी' (1952) में नृपेन्द्ररंजन निम्न–वर्ग की जिप्सी लड़की 'मनिया' से प्रेम कर ब्याह करता है और आगे चलकर अपने मित्र की पत्नी शोभना के प्रति आकृष्ट हो जाता है। 'मनिया' यहसहन नहीं करती और घर से निकलकर वीरेन्द्र की संस्था में शामिल हो जाती है। तेजाब से जले अपने चेहरे को अमेरिका जाकर प्लास्टिक सर्जरी करवाती है, और मंजुला नर्स बनकर सेवा दल में कार्य करती है। पुनः रंजन की मुलाकात मनिया (मंजुला) से होती है तो वह उसके प्रति आकर्षित होता है। मनिया नहीं जाती है और रंजन को जनसेवा के लिए पुनः पहाड़ पर भेज देती है।

प्रस्तुत उपन्यास में मनिया 'जिप्सी' अर्थात् स्वतंत्र नारी के रूप में चित्रित है, जो श्रमशील है, अस्तित्ववादी है। 'नृपेन्द्ररंजन' के रूप में अभिजात्यवर्ग के धनी व्यक्ति भी भोग–लिप्सा और अहं का चित्रण है, जो नारी को अपनी सम्पत्ति समझकर भोग की वस्तु मात्र समझता है। इस भोगी–प्रवृत्ति का अंत लेखक ने समाज–सेवा में किया है।

'जहाज के पंछी' (1956 ई०) जोशी जी का चर्चित उपन्यास हैं इसमें पढ़ा–लिखा एक मध्यवर्गीय व्यक्ति साधन हीन हैं कलकत्ते की महानगरीय जीवन, जो संवदेनशून्य है; समें प्रताड़ित होकर जीने की विवश है। इस प्रताड़ना में व्यक्ति अपना ईमान भुला दे तो कोई कष्ट नहीं है वरना जहाज के पंछी की तरह टूटता, गिरता चक्कर काटता पुनः वहीं को लौट आता है। अंततः इसका नायक अपने आदर्शवाद से किसी प्रकार समझौता न करते हुए प्रेम को भी तभी स्वीकारता है, जब उसकी धी प्रेमिका अपना धन–दौलत त्यागकर उसके पास आती है। इस कथा के साथ वेश्या–जीवन पहलवानों–गुंडों का जीवन धोबियों का जीवन, कलाप्रिय उच्चवर्गीय नारियों का इकहरा जीवन जो बाहर से सम्पन्न और अन्दर से खोखला है, पुलिस वालों का कुचक्री, झूठा–प्रवंचनापूर्ण जीवन और भादुड़ी साहा जैसे एम० एल० ए० का कुत्सित जीवन–यात्रा भी साथ–साथ चलती है। 'जहाज के पंछी' का प्रत्येक पात्र मनोविश्लेषणात्मक हैं। लेखक ने इस उपन्यास में सामाजिक जीवन के विभिन्न स्तरों के बीच की कठिनाईयों में पिसते हुए व्यक्ति–चेतना को दर्शित किया हैं आधुनिक समाज की विभीषिका को प्रकाशित किया है। इलाचन्द्र जोशी' अपने इस उपन्यास के लिए आज भी स्मरणीय हैं।

अज्ञेय के उपन्यास हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास को प्रोढ़ता प्रदान करते हैं। 'शेखर एक जीवनी' प्रथम खण्ड (1940 ई०) द्वितीय खण्ड (1944 ई०) में प्रकाशित हुआ। इसकी ओपनयासिक प्रतिमा का आंकल सी से किया जा सकता है कि डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने कहा है – ''शेखर एक जीवनी' को लेकर जितनी चर्चा (अनुकूल–प्रतिकूल) हिन्दी–संसार में हुई उतनी किसी उपन्यास को लेकर नहीं हुई।'' आगे डॉ० रामचन्द्र तिवारी कहते हैं – ''अज्ञेय स्वयं अपने और अपनी कृतियों के सम्बन्ध में काफी कुछ कह डाला है। उनके अनुसार 'शेखर परिस्थितियों में विकसित होते ुए एक व्यक्ति का चित्र है' और 'उस चित्र के निमित्त उन परिस्थितियों की आलोचना ही होती गई है।' स्वातन्त्रय की खोज ही शेखर का जीवन–दर्शन है।" शेखर की यह स्वतन्त्र–सत्ता मूलतः काम–भावना से प्रेरित, है। वह अपने जीवन में कई नारियों यथा 'सरस्वती' (सगी–बहन), 'शशि', 'शारदा', 'शान्ति', आदि की ओर आकर्षित होता है। 'शशि' को प्राप्त कर उसके सारे मानसिक द्वन्द्व का सामंजन हो जाता है। 'शेखर' अपने विद्रोही व्यक्तित्व के साथ समाज के यथार्थ के समक्ष मौन है।

'नदी के द्वीप' में चार मुख्य पात्र डॉ० भुवन, रेखा, गौरा और चन्द्रमोहन है तथा गौण पात्र हेमेन्द्र और डॉ० रमेशचन्द्र हैं। 'डॉ० भुवन के बारे में आलोचकों को मत है कि ये 'शेखर' ही है। 'अज्ञेय' ने 'आत्मनेपद' में 'नदी के द्वीप' के बारे में कहा है – ''नदी के द्वीप' समाज के जीवन का चित्र नहीं है, एक अंग के जीवन का है; पात्र साधारण जन नहीं हैं, एक वर्ग के व्यक्ति हैं और वह वर्ग भी संख्या की दृष्टि से अप्रधान ही है; लेकिन कसौटी मेरी समझ में यह होनी चाहिए कि क्या वह जिस वर्ग का चित्रण है, उसका सच्चा चित्र है? गगग मेरा विश्वास है कि 'नदी के द्वीप' उस समाज का, उसके व्यक्तियों के जीवन का जिसका वह चित्र है, सच्चा चित्र है।'' अज्ञेय ने समाज में सम्बन्धों के स्वरूप विशेषतः नारी–पुरूष के सम्बन्धों की वास्तविकता को अनुकूल परिवेश, बिम्ब, प्रतीकों के द्वारा वर्णित किया है। इन सम्बधों के तनाव, पीड़ा, हर्ष उन्माद आदि विभिन्न मनःस्थितियों की जटिल ग्रंथियों को खोलने का प्रयास किया हैं।

''अपने–अपने अजनबी'' (1961) अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है। मृत्यु से साक्षात्कार कराता यह उपन्यास मृत्यु को समीप पाकर उस क्षण मानव की मनोदशा कैसी होती है, इसकी अनुभूति देता है। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर अज्ञेय ने कहा है – ''मृत्यु को सामने पाकर कैसे प्रियजन भी अजनबी हो ज ाते हैं और अवनबी एक पहचाने हुए, कैसे इस चरम स्थिति मे मानव का सच्चा चरि उभर कर आता है – उसका प्रत्यक्ष, उसका अदम्य साहस और उसका विमल अलौकिक प्रेम भी वैसे ही और उतने ही अप्रत्याशित ढ़ंग से क्रियाशील हो उठते हैं, जैसे उसकी निम्नतर प्रवृत्तियाँ।'' प्रस्तुत उपन्यास में तीन अध्यायों में तीन दृश्यों को दिखाया गया है। तीनों जगह मृत्यु की पीड़ा है। लेकिन इस पीड़ा से भी बड़ी पीड़ा है, परतंत्रता में जीना। अस्तित्व के किसी भी क्षण पर मनुष्य का अधिकार नहीं है। 'सेल्मा' मृत्यु को सामने पाकर जितनी दुःखी नहीं है उतना योके के साथ इस अंत समय में क्षण गुजारने से पीड़ित है। 'योक' भी इस बर्फ से ढके घर जो कब्र सदृश्य है, में एक मृत्यु का बाट जोहते मनुष्य के साथ रहने को बाध्य है।

इधर बाढ़ की विभीषिका से ग्रस्त नदी के पुल के नीचे का बाजार क्षत–विक्षत है और उसमें बसर करने वाले लोग भयाक्रान्त हैं। उपन्यास का अन्य पात्र फोटोग्राफर जहाँ मृत्यु को वरन् कर लेता है वहीं यान सेल्मा से शादी के बाद मृत्यु को प्राप्त कर जाता है। सेल्मा अकेली बच जाती है। उपन्यास का प्रत्येक पात्र निज–स्वतंत्रता की चाह में व्यथित है, पीड़ित है और तलाश में है। प्रत्येक पात्र अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए मृत्यु तक को वरन् कर लेता है। 'योके' सेल्मा के मृत्यु के पश्चात् सोचती है – ''ईश्वर की शायद स्वेच्छाचारी नहीं है–उसे भी सृष्टि करनी ही है, क्योंकि उन्माद से बचने के लिए सृजन अनिवार्य है, वह सृष्टि नहीं करेगा तो पागल हो जायेगा।'' योके का यह वकतव्य सम्पूर्ण उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है।

अज्ञेय को आलोचकों ने डी० एच० लारेंस, तुर्यनेव, रोम्याँ, वर्जीनिया बुल्फ, सात्र आदि पाश्चात्य–साहित्यकारों से प्रभावित माना है। 'अज्ञेय' की ये तीनों कृतियाँ हिन्दी उपन्यास को अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने का काम किया है।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की अगली कड़ी में डॉ० देवराज की कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। डॉ० देवराज (1917–1999 ई०) का 'पथ की खोज' (1951 ई०), 'बहार–भीतर' (1954 ई०) 'रोड़े और पत्थर' (1958 ई०), 'अजय की डायरी' (1960 ई०) 'दोहरी आग की लपट' (1973 ई०) दूसरा सत्र (1978 ई०) उपन्यास प्रकाशित हैं। 'ष्शु की खोज में आधुनिक मध्यवर्गीय समाज के शिक्षित सदस्यों के जीवन की व्यक्तिगत समस्याओं का मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के आधार पर समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है। नये पथ का खोज किया गया है। 'बारह–भीतर' में सामाजिक एवं वैयक्तिक मान्यताओं के संहर्ष को दिखलाया गया है। आगे चलकर 'भीतर के घाव' के नाम से पुनः इसे नवीन रूप से प्रकाशित किया गया है। 'रोड़े और पत्थर' एक निम्नमध्यवर्गीय चरित्र का जीवन–संहर्ष है। 'हरीश' और 'कम्मों' के द्वारा आर्थिक अभाव में पिसते कुंठित जीवन की व्यथा कही गई है। 'अजय की डायरी' डॉ० देवराज की चर्चित कृति है। इसमें लेखक ने डायरी लिखने की शैली में नवीन प्रयोग किया है। इस उपन्यास में एक पात्र, दूसरे पात्र की डायरी पढ़कर अपनी डायरी लिखता है। 'अजय' एक बुद्धिजीवी युवक है। अपनी पत्नी शीला से वह चाहता है – ''मेरे संशय और संदेह को, मेरे बोध और संकल्प की जटिलताओं को छूते, टटोलते हुए मुझे सुलझाने–समाहृत्त होने में, इकाई बनकर जीने व बढ़ने में मदद दे।'' किन्तु उसकी पत्नी 'शीला', 'हेम' के प्रति आकृष्ट है। वह अपनी पत्नी को ाने का कोई रास्ता नहीं निकाल पाता है और सरकार द्वारा वीजा मिलने पर अमेरिका चला जाता है। लौटने पर न पत्नी मिलती है न प्रेमिका। प्रेम के अन्तर्सम्बन्धों को विश्लेषित करनेवाले इस उपन्यास में नायक वैयक्तिक शर्तों पर प्रेम की प्राप्ति चाहता है और वह असफल होता है। 'मैं, ये और आप' विगत उपन्यास 'डायरी' के ही प्रश्नों की अगली कड़ी है।

डॉ० देवराज एक दार्शनिक विचारक हैं। उनके विचारों की गहनता का स्पष्ट प्रभाव उनके उपन्यास में है। उनका मानना है कि टॉमस, दास्ताएब्स्की तथा मार्सेल जैसे उपन्यासकारों में भी विचारों की प्रधान्त है। इनका विचारक रूप इनकी रचनाओं में बाधक तो नहीं है।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की यह धारा इन अग्रणी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के के द्वारा हिन्दी उपन्यास में अपनी प्रोढ़ता को प्राप्त हुआ है। मनोविश्लेषण की यह विशिष्ट परम्परा आज के वैपम्यजनित दौर में फलती–फुलती, द्रुत गति से निरन्तर प्रवाहमान है। इन्हें गतिशीलता प्रदान करने में निम्नलिखित उपन्यासों का विशेष योगदान रहा है।

प्रभाकर माचवे (1917–1991 ई०) का 'द्वाभा' उपन्यास (1957 ई०) नारी की दुविधा भरी जिन्दगी का चित्रण है। उपन्यास 'आभा' 'द्वाभा' में जीवन बिताती है। नरेश मेहता (1921–2000 ई०) का 'घूमकेतुः एकश्रुति' (1962 ई०) में 'उदयन' नाम के मातृहीन बालक के मानसिक विकास को मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से विचित्र किया गया है। वहीं 'डूबते मस्तूल' (1954 ई०) इनका प्रथम उपन्यास है, जिसमें 'रंजना' नाम की स्त्री एक के बाद एक कई पुरूषों के सम्पर्क में आती है, परन्तु कोई उसके आत्मिक सौंदर्य को नहीं देख पाया। फलस्वरूप वह आत्म हत्या कर लेती है।

ठाकुर प्रसाद सिंह (1924–1993 ई०) के दो उपन्यास 'कुब्जा सुन्दरी' (1963 ई०) बाद में 'आहिम' नाम से प्रकाशित एवं 'सात धरों' का गाँव (1985 ई०) है।

कृष्ण चन्द्र शर्मा 'भिक्खु' (1924–2003 ई०) के लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास है, जो आधुनिक बोध से प्रभावित है। 'आदमी का बच्चा' (1950 ई०), से प्रारम्भ होकर 'संक्राति (1951 ई०), 'भॅबरजाल' (1954 ई०), 'मौत की सराय' (1970 ई०) आदि है। 'कदाचित' (1996 ई०) और 'महाद्वन्द' (2003 ई०) भी प्रकाशित है। 'कदाचित' में स्त्री पुरूष के स्वभाव को अनावृत किया उत्पीड़न, शरीरिक वं आत्मिक सौंदर्य भेद, हत्या एवं आत्महत्या जैसे अपराधों के पीछे का कुंठित मनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण है।

रामदरश मिश्र (1924 ई०) अपने आंचलिक उपन्यास के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन आंचलिकता इतर भी मनोवैज्ञानिक छवि वाले उपन्यास को उन्होंने लिखा है। 'बीच का समय' (1970 ई०) 'सूखता तालाब' (1972 ई०), 'रात का सफर' (1976 ई०) 'बिना दरवाजे का मकान' (1984 ई०) आदि उपन्यास हैं।

मोहन राकेश (1925–1972 ई०) ने कुल तीन उपन्यास लिखे हैं। 'अँधेरे बन्द कमरे (1961 ई०), 'न आनेवाला कल' (1968 ई०) और 'अंतराल' (1972 ई०)। 'अंधेरे बन्द कमरे' में महानगरी दम्पत्ति के जीवन की विसंगतियों का चित्रण है। 'हरवंश' और 'नीलिमा' पति–पत्नी हैं। दोनों अपने–अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास चाहते हैं। इस क्रम में परस्पर एक–दूसरे को सहयोग भी देते हैं और एक–दूसरे की सफलता पर इर्ष्या भी करते हैं। दोनों इस अंधेपन के बन्द कमरे में असहनीय घुटन, संत्रास पीड़ा को झेलते हुए बेचने जिन्दगी बसर करते हैं।

श्री लाल शुक्ल (1925 ई०) अपने ब्यंयात्मक शैली में लिखी पुस्तक 'रागदरबारी' के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन 'सीमाएँ टूटती हैं (1973 ई०) में परिवार के अन्दर टूटते–बनते जटिल सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। धर्मवीर भारती (1926–1997 ई०) के उसे एवन्श्सय 'गुनाहों का देवता' (1949 ई०) और 'सूरज का सातबां घोड़ा (1952 ई०) हैं। सूरज का सातवाँ घोड़ा अपनी नई टेक्निक के लिए हिन्दी–उपन्सास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। माणिक मुल्ला द्वारा सात कहानियों मे सात जिन्दगी का वर्णन है। यह उपन्यास मध्यवर्ग पर छाये आर्थिक संहर्ष नैतिक विश्रृंखलता, अनाचार, निराशा कटुता जैसे अँधेरों के बीच प्रेम के खोने की बात करता है। परन्तु उसे आशा है कि कोई–न–कोई ऐसी चीज है, जो हमें अँधेरा चीरकर आगे बढ़ने की ओर प्रेरित करता है।

कृष्ण बलदेव वैद (1929 ई०) उपन्यास में शहरी अभिजात्यवर्गीय जीवन की समस्या को उठाया गया हैं जिसके मूल में युग का लिविडो है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (1927 ई० – 1983 ई०) के तीन छोटे–छोटे उपन्यास हैं। 'सोया हुआ जल' (1954 ई०) पागल कुत्तों का मसीहा (1977 ई०) और सूने चौखटे (1981 ई०)। 'सोया हुआ जल' सिनोरियों

शिल्प में लिखा गया एक प्रतीकात्मक उपन्यास है। यह एक नवीन प्रयोग का उदाहरण है। फ्रायड के अवचेतन के सिद्धान्त का अनुसरण करते हु सर्वेश्वर बाबू ने 'रात्रिशाला' जिसके अलग–अलग लोग हैं, को संसार का प्रतीक बनाया है जो लेखक की संवेदनशीलता का प्रतीक है। मनुष्य के अवचेतन में छिपे अभावों की अभिव्यक्ति उपन्यास के पात्र राजेश, विभा, किशोर और रत्ना के द्वारा हुआ है।

राजेन्द्र यादव (1926 ई०) के कुल छः उपन्यास – 'प्रेत बोलते हैं' (1952 ई०), उखड़े हुए लोग' (1956 ई०) 'कुलटा' (1958 ई०) 'शह और मात' (1959 ई०), 'एक इंच मुस्कान' (1963 ई०), 'अनदेखे–अनजाने पुल' (1963 ई०) प्रकाशित हैं। इनमें 'एक इंच मुस्कान' की रचना राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी (उनकी पत्नी) दोनों ने मिलकर की है। अपने सभी उपन्यासों में राजेन्द्र यादव ने मानव–मन के रहस्यों की गुत्थी को सुलझाने का प्रयास किया है। व्यक्ति के चित्र पर बाहरी दवाबों के फलस्वरूप होने वाली क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म चित्रण इन उपन्सायों में है। 'अनदेखे अनजाने पुल' मे इन्होंने मनोविश्लेषणबादं का अतिरेक कर दिया है।

पूर्णता की प्राप्ति में मनुष्य का पाशविक स्तर तक गिर जाना उसके अहं की तुष्टि का अतिरेक है। प्रस्तुत उपन्यास में इस नम्न यथार्थ को चित्रित किया गया है।

निर्मल वर्मा (1929–2005 ई०) के कई उपन्यास 'वे दिन' (1964 ई०), 'लाल टीन की छत' (1974 ई०), एक चिथड़ा सुख (1979 ई०), 'रात का रिपोर्टर' (1989 ई०) अंतिम अरण्य' (2000 ई०) प्रकाशित है। ''वे दिन'' मे अकेलेपन का बोध, जीवन की व्यर्थता का बोध, उदासी, तनाव, अनिश्चितता आदि विद्यमान है। 'लालटीन की एक छत' में एक किशोरी के युवती बनने के बीच के समय भी मानसिक उथल–पुथल का वर्णन है। अपनी स्थितियों से अवगत कराने के लिए उसे हम उम साथी की तलाश है। इस अभाव में उसकी झुंझलाहट, आक्रोश, हताशा आदि मनोव्यथा को दिखाया गया है। 'अंतिम अरण्य' में उपन्यास के पात्र जीवन–मृत्यु की पहेली में उलझे हुए दार्शनिक से जान पड़ते हैं।

राजकमल चौधरी (1931–1967 ई०) के उपन्यासों में 'नदी बहती थी' (1962 ई०), 'मछली भरी हुई (1966 ई०), 'शहर था शहर नहीं था' (1966 ई०), 'देहगाथा', ताश के पत्तों का शहर', 'बीस रानियों के वाइसकोप' (1972 ई०)', 'अग्निस्नान' (1978 ई०)', आदि उल्लेखीय हैं। इनके उपन्यासों में इनका कवित्व उभड़कर सामने आया है। इन्होंने अपने उपन्यासों मे नगरों की खोखली सभ्यता की विकृतियों का चित्रण है। इन कुत्सित जीवन को दिाने मे देह की राजनीति अधिक प्रकाशित हुई है।

इनके अलावा श्रीकान्त वर्मा (1931–1986 ई०) का उपन्यास 'दूसरी बार' (1968 ई०), महीप सिंह का (1930 ई०), का 'यह भी नहीं है' (2004 ई०), योगेश गुप्त (1931–2006 ई०) का 'उनका फैसला (1977 ई०), द्रोणवीर कोहली (1952 ई०), महेन्द्र भल्ला (1933 ई०) का 'एक पति के नोट्स (1967 ई०), मनोहर श्याम जोशी (1933 ई०) का 'कसप' (1982 ई०) और टा–टा प्रोफेसर (2001 ई०), कामतानाथ का 'तुम्हारे नाम' (1979 ई०), गिरिराज किशोर (1936 ई०) के कई उपन्यासों में एक तीसरी सत्ता (1982 ई०), विनोद कुमार शुक्ल (1937 ई०) का 'नौकर की कमीज' (1979 ई०), गोविन्द मिश्र (1939 ई०) का 'तुम्हारी रोशनी में' (1985 ई०) मणिमधुकर (1982–1995 ई०) का पिंजरे में पन्ना (1981 ई०), सुरेन्द्र वर्मा का मुझे चाँद चाहिए (1993 ई० आदि हिन्दी के मनोवैज्ञानिक धारा से प्रभावित उपन्यास हैं। इसके अतिरिक्त उपेन्द्रनाथ अशक का 'गिरती दीवारे' और 'शहर में घूमता आईना', डॉ० शिव प्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', लक्ष्मीकांत वर्मा का क कटी हुई जिन्दगीः एक कटा हुआ कागज', चतुरसेन शास्त्री का 'पत्थर युग के दो बुत', ब्योमेश कुमार के 'टूटते बिखरते लोग', रवीन्द्र वर्मा का 'पत्थर ऊपर पानी' आदि ऐसे उपन्यास हैं जो हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की परम्परा को गतिमान बनाया है।

इन सबके बीच का महिला उपन्यासकारों की रचनाओं ने भी हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास–कोश को समृद्ध किया है। प्रेमचन्द युग में ही महिला उपन्यासकारों का आगमन हो चुका था। स्वाधीन भारत में इनका शसक्त पीढ़ी तैयार हुआ है। दिनेश नंदिनी डालमिया (1928–2007 ई०), शशिप्रभा शास्त्री (1923–2000 ई०), शिवानी (1923–2003 ई०), अमृता प्रीतम (1919–2005 ई०), कृष्ण' सोबती (1925–2019 ई०), दीप्ति खण्डेलवाल (1930 ई०), मन्नू भंडारी (1931 ई०), उषा प्रियम्वदा (1931 ई०), राजी सेठ (1935 ई०), मंजूल भगत (1936–1998 ई०), मृदुला गर्ग (1938 ई०), चन्द्रकांता (1938 ई०), कुसुम कुमार (1939 ई०), ममता–कालिया (1940 ई०), चित्रा चतुर्वेदी (1939 ई०), प्रभा खेतान (1942 ई०), मैत्रेयी पुष्पा (1948 ई०), चित्रा चतुर्वेदी (1939 ई०), प्रभा खेतान (1942 ई०), मैत्रेयी पुष्पा (1944 ई०), वीणा सिंह (1957 ई0), गीतांजलि श्री (1957 ई०), मधु कांकरिया (1957 ई०), या जादवानी (1959 ई०), अलका सरवगी (1960 ई०) और नीरजा माधव (1962 ई०) प्रमुख है।

इन सभी महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में नारी–समस्या केन्द्रीय विष रहा है। नारी का समाज में शोषण के विभिन्न रूपों की विभीषिका का भरपुर उल्लेख किया गया है। हम 21 वीं सदी में भले जी रहे हो, लेकिन स्त्रियों की पराधीनता की समस्या आज भी है। अन्तर सिर्फ इनके स्वरूपों में हुआ है। प्रकृति प्रदत्त पुरूषत्वता का प्रयोग आज भी नारी के ऊपर किया जा रहा है। इनकी सोच भौतिकता में अंध है। वर्तमान दौर मेंतो इस अंधेपन का वीभत्स रूप चहुँओर नृत करता दिखाई देता है। नारी स्वयं को चाहे जितना सशक्त कर ले उसे अशक्त करने वाले पुरूष रूपी हाथ लम्बी ही होती जा रही हैं। इनके उपन्यासों में नारी–जगत के बाधाओं के बीच संहर्ष करती, 'निरंतर आगे' को बढ़ती हुयी स्त्री–जाति की आत्मनिर्भर बनने की कहानी है। स्त्री मनोविज्ञान को केन्द्र में रखकर उसके सर्वांग पक्ष को रखने का

प्रयास किा गया है। भावना की तरलता, राग–विराग, पीड़ा–दर्द, शोक विषाद, आनन्द, आह्लाद इन सभी का चित्रण है।

कृष्णा सोबती का ''जिन्दगीनामा'' इनसे अलग पंजाबी परिवेश और अधिकतर पंजाबी शब्दों और टोन में लिखा आंचलिक उपन्यास हैं। जिसमें स्वतंत्रतापूर्व के पंजाब के जीवन का चित्रण है। कृष्णा सोबती का सूरजमुखी अँधेरे के' (1972 ई०) एक लघु एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसमें 'स्त्री' नाम की बालिका जो पुरूष की पाशविकता का शिकार हो गी होती है कि मानसिक स्थिति का वर्णन है। स घटना के बाद वह क्रूर, विद्रोही, असहिष्णु बन जाती है। उसकी व्यथा का अंत तब होता है, जब उसे दिवाकर मिलता है। इसमें नारी–जीवन के मनोवैज्ञानिक समस्या का उभाड़ा गया है।

दीप्ति खंडेलवाल का 'वह तीसरा' (1976 ई०) में स्त्री–पुरूष सम्बन्धों की जटिलता का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। आज के बदलते माहौल में भी स्त्री असुरक्षित और अभिशप्त है। प्रस्तुत उपन्यास में दीप्ति पुरूष के एकाधिकारी की प्रवृत्ति से तंग विवाह–संस्था पर सवाल उठाती नजर आती है।

मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' (1971 ई०) कथा–साहित्य मे अनूठे ढंग का उपन्यास है। आज के व्यस्त जिन्दगी मे महानगरों में रहने वाले दम्पत्तियों की सबसे प्रमुख समस्या है–'तलाक'। 'बंटी' इसी समस्या की पीडा भोगने वाला बच्चा है। जो अपने तलाक–शुदा माँ शकुन' के साथ रहते हुए डॉ० साहब को पिता नहीं मान पाता और पिता 'अजय' के साथ रहते हुए 'मीरा' को माँ नहीं मान पाता। वह उपेक्षित जीवन जीते हुए चिड़–चिड़ा, जिद्दी विद्रोही बन जाता है। उसकी मानसिक पीड़ा का चित्रण ही मन्नू मंडारी का यह उपन्यास है।

उषा प्रियम्वदा का रूकोगी नहीं राधिका' (1967 ई०) राजी सेठ का 'तत्सम' (1983 ई०) मंजुल भगत का 'खातुल' (1983 ई०), मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' (1996 ई०) चित्रा मुद्गल का एक जमीन अपनी (1990 ई०) कान्ता भारती की 'सूर्यबाला', कमल कुमार का 'आवर्त्तन' (1992 ई०), निरूपमा सोवती का 'पतझड़ की आवाजें' (1976 ई०) प्रभा खेतान की 'पीली आँधी (1996 ई०) मैत्रेयीम पुष्पा की 'त्रिया हठ' (2006 ई०) आदि उपन्यासों की आवाध गति ले बढ़ती धारा हैं जो जीवन के विविध रूपों से हमारा हृदय–स्पर्श कराती चलती हैं।

हिन्दी उपन्यास का यह विस्तृत कोश अपनी विराटता में गतिशील है। उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक किसी–न–किसी रूप में विद्यमान है। वस्तुगत आधार पर या शिल्पगत आधार पर मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित आधुनिकता बोध को लिए हुए ये उपन्यास हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास को समृद्धि प्रदान कर रहे हैं।

संदर्भ सूची :–

1. कहानी : अनुभव और शिल्प : जैनेन्द्र कुमार : पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०–64–65.
2. हिन्दी उपन्यास : डॉ० रामचन्द्र तिवारी : विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण – 2006 ई०
3. वही पृ० 67.
4. आत्मनेपद – अज्ञेय : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी 1960 ई० पृ०–73.
5. वही – पृ० 73.
6. अपने–अपने अजनबी : अज्ञेय : भारतीय साहित्य संग्रह, 1961 ई० (आवरण पृष्ठ)
7. वहीं
8. अजय की डायरी : डॉ० देवराज, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, – 1960 ई० पृ०–291.

अन्य सहायक ग्रन्थ :–

1. आधुनिक हिन्दी कथा – साहित्य और मनोविज्ञानः डॉ० देवराज उपाध्याय, साहित्य भवन, द्वितीय संस्करण, 1963 ई०।
2. हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध): डॉ० गिरिधर प्रसाद शर्मा : भारतीय विद्या भवन हजारीमल सोमानी कॉलेज, बम्बई – 1978 ई०
3. हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा : डॉ० रामदरश मिश्र : प्रथम संस्करण। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1968 ई० ।